विश्व नृत्य दिवस आज

नृत्य : मन के भावों का अभिनीत गीत

नृत्य मनुष्य के उल्लास का प्रत्यक्ष भावात्मक प्रदर्शन है। जब मन उल्लास से भर उठता है, तो शारीरिक चेष्टाएं उसकी अभिव्यक्ति नृत्य के रूप में करती हैं। इस प्रकार नृत्य मन के भावों का अभिनीत गीत है। यदि सूक्ष्मता से देखें तो प्रकृति का हर तत्व खुशी में नृत्य करता जान पड़ता है। बरसते पानी में महकती धरती पर सिर्फ मोर ही नहीं नाचते, पेड़ों की डालियां भी वर्षा की बूंदों के साथ झूमती नजर आती हैं। प्रकृति से इतर अपनी सभ्यता और संस्कृति के विकास क्रम में मनुष्य ने नृत्य की लय और गति को विभिन्न शैलियों में बांधकर नृत्य के अनेक प्रकारों को सृजित किया है। भारत में बहुल सांस्कृतिक विविधता में विभिन्न नृत्य शैलियां विकसित हुईं हैं। इन नृत्य शैलियों को शास्त्रीय नृत्य और लोक नृत्य की दो श्रेणियों में रख सकते हैं। यह दोनों ही शैलियां भारतीय संस्कृति, इतिहास और सामाजिक जीवन के जीवंत प्रतीक हैं।

डॉ. प्रशांत अग्निहोत्री
निदेशक, रुहेलखंड शोध संस्थान, शाहजहांपुर

भारत में लोक नृत्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन, विविधतापूर्ण और जीवंत रही है, जो देश की सांस्कृतिक बहुलता का सशक्त प्रतीक है। यह परंपरा विभिन्न क्षेत्रों, जातीय समूहों और सामाजिक समुदायों के जीवन से गहराई से जुड़ी हुई है। भारत के प्रत्येक प्रदेश- जैसे पंजाब, राजस्थान, गुजरात और असम की अपनी विशिष्ट लोकनृत्य शैलियां हैं, जो वहां की भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करती हैं। लोक नृत्यों का उद्भव मुख्यतः कृषि-आधारित समाज से हुआ, जहां फसल कटाई, वर्षा, विवाह और धार्मिक उत्सवों के अवसर पर सामूहिक रूप से नृत्य किया जाता था।

उदाहरण के लिए, पंजाब का भांगड़ा फसल की खुशी का प्रतीक है, जबकि गुजरात का गरबा देवी-उपासना से जुड़ा हुआ है। इन नृत्यों में स्थानीय लोकगीत, वाद्य यंत्र और पारंपरिक वेशभूषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। आधुनिक समय में भी लोक नृत्य अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं और सांस्कृतिक उत्सवों व मंचीय प्रस्तुतियों के माध्यम से इन्हें नया आयाम मिला है।

कथक नृत्य

कथक भारतीय शास्त्रीय नृत्य परंपराओं में एक प्रमुख और विकसित शैली है, जिसकी ऐतिहासिक जड़ें प्राचीन कथावाचन परंपरा से जुड़ी हैं। 'कथक' शब्द 'कथा' से बना है और प्रारंभ में कथक वे कलाकार थे, जो मंदिरों और जनसभाओं में धार्मिक कथाएं प्रस्तुत करते थे। यह शैली उत्तर भारत, विशेषत: उत्तर प्रदेश में विकसित हुई तथा लखनऊ और जयपुर घरानों के माध्यम से समृद्ध हुई। इसके विकास को तीन चरणों में देखा जा सकता है- मंदिर परंपरा, दरबारी प्रभाव और आधुनिक मंचीय स्वरूप। भक्ति काल में इसमें कृष्ण लीलाओं का वर्णन प्रमुख रहा, जबकि मुगल काल में इसमें नजाकत, श्रृंगार और तकनीकी जटिलता का समावेश हुआ। कथक की विशेषता उसकी भाव-भंगिमा, 'अभिनय', तेज 'तत्कार' और घूमरदार 'चक्कर' हैं, जो इसे विशिष्ट बनाते हैं।

लिल्ली घोड़ी

लिल्ली घोड़ी या कठ घोड़वा नृत्य उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्रामीण अंचलों में प्रचलित एक पारंपरिक लोकनृत्य है। यह नृत्य विवाह, मेलों और उत्सवों में प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक रूप से इसका संबंध वीरता और घुड़सवारी की परंपरा से है। नर्तक लकड़ी या बांस से बने कृत्रिम घोड़े को कमर में बांधकर रंग-बिरंगे वस्त्रों में नृत्य करते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो वे घोड़े पर सवार हों। यह नृत्य मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक संदेशों का भी माध्यम रहा है।

कजरी

कजरी भारतीय लोकसंगीत की एक भावप्रधान शैली है, जिसका उद्गम उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर और वाराणसी क्षेत्र में माना जाता है। सावन-भादों की वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले कजरी गीत विरह, प्रेम और प्रकृति के सौंदर्य को अभिव्यक्त करते हैं। जब इन गीतों के साथ नृत्य किया जाता है, तो यह एक संपूर्ण सांस्कृतिक अनुभव बन जाता है। स्त्रियां समूह में झूला झूलते हुए या आंगन में गोल घेरा बनाकर कजरी गाती और नृत्य करती हैं। यह शैली ग्रामीण जीवन की सहज अभिव्यक्ति है, जिसमें भाव और लय का सुंदर संतुलन दिखाई देता है।

मयूर नृत्य

मयूर नृत्य भारतीय लोक और शास्त्रीय परंपराओं का एक मनोहारी रूप है, जो विशेष रूप से ब्रज क्षेत्र में प्रचलित है। इसका संबंध कृष्ण की लीलाओं और प्रकृति-प्रेम से जोड़ा जाता है। वर्षा ऋतु में मोर के नृत्य से प्रेरित होकर यह शैली विकसित हुई। कलाकार मोर के पंखों से सुसज्जित वेशभूषा पहनकर उसकी चाल और मुद्राओं का अनुकरण करते हैं। बांसुरी, ढोलक और मंजीरा जैसे वाद्य यंत्र इसकी लयात्मकता को और अधिक आकर्षक बनाते हैं।

जोगिनी नृत्य

जोगिनी नृत्य उत्तराखंड और हिमालयी क्षेत्र की लोकसंस्कृति का एक आध्यात्मिक रूप है। यह देवी-उपासना और धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ा हुआ है। इस नृत्य में नर्तक भावावेश में आकर नृत्य करते हैं, जिससे दैवीय अनुभूति का संचार होता है। ढोल, दमाऊ और रणसिंघा जैसे वाद्य यंत्र इसकी ऊर्जा को बढ़ाते हैं। इस प्रकार भारत के लोक नृत्य न केवल मनोरंजन के साधन हैं, बल्कि वे देश की सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक जीवन और ऐतिहासिक परंपराओं का सजीव प्रतिबिंब भी प्रस्तुत करते हैं।

पाय डंडा

पाय डंडा नृत्य उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में प्रचलित एक ऊर्जावान लोकनृत्य है। यह नृत्य मुख्यत: फसल कटाई, मेलों और धार्मिक अवसरों पर किया जाता है। इसमें डंडों का तालबद्ध टकराव वीरता और समन्वय का प्रतीक होता है। इसका संबंध प्राचीन युद्धाभ्यास और शारीरिक कौशल से भी जोड़ा जाता है।

छपेली

छपेली नृत्य उत्तराखंड के कुमाऊं क्षेत्र का एक लोकप्रिय लोकनृत्य है, जो वसंत ऋतु और होली जैसे उत्सवों पर किया जाता है। इसमें स्त्री-पुरुष युगल के रूप में भाग लेते हैं और लोकगीतों की धुन पर संवादात्मक शैली में नृत्य करते हैं। इसमें श्रृंगार, हास्य और सामाजिक जीवन के विविध रंग दिखाई देते हैं। हुड़का और मंजीरा जैसे वाद्य यंत्र इसकी लय को सजीव बनाते हैं।

नौटंकी नौटंकी उत्तर भारत की एक लोकप्रिय लोकनाट्य परंपरा है, जिसमें संगीत, गायन, संवाद और नृत्य का समन्वय होता है। इसका विकास विशेषत : उत्तर प्रदेश में हुआ। नौटंकी में नृत्य कथा-वाचन का महत्वपूर्ण माध्यम है। इसमें कथक की छाप स्पष्ट दिखाई देती है, विशेषकर चक्कर और भाव-भंगिमा में। ढोलक, नगाड़ा और हारमोनियम की ताल पर कलाकार नृत्य करते हुए कथा को जीवंत बनाते हैं। नौटंकी में सम्मिलित नृत्य स्वरूप विविध लोक और शास्त्रीय शैलियों से प्रभावित होते हैं। इनमें कथक की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, विशेषकर उसकी घूमरदार चाल, चक्कर और भाव-भंगिमा में। इसके साथ ही लोकनृत्य की सरलता और सहजता भी इसमें समाहित रहती है, जिससे यह आम जनमानस के लिए अधिक ग्राह्य बन जाता है। नौटंकी के नृत्य में अभिनय (अभिनयात्मक नृत्य) का विशेष स्थान होता है। कलाकार गीतों और संवादों के बीच नृत्य करते हुए कथा के भावों को अभिव्यक्त करते हैं। स्त्री पात्रों की भूमिका, चाहे पुरुष कलाकार निभाएं या स्त्रियां, उसमें लयात्मकता और नज़ाकत का समावेश होता है। नृत्य की गतियां अधिक जटिल न होकर दर्शकों के साथ संवाद स्थापित करने वाली होती हैं।

आर्ट गैलरी

सहयोग और जीवन की यात्रा दर्शाती पेंटिंग

यह पेंटिंग आधुनिक शैली की एक प्रभावशाली रचना है, जिसमें मानव जीवन, श्रम और सामाजिक संबंधों को प्रतीकात्मक रूप में दर्शाया गया है। चित्र में कई मानव आकृतियां दिखाई देती हैं, जिन्हें ज्यामितीय आकृतियों जैसे वृत्त, त्रिभुज और आयत के माध्यम से उकेरा गया है। यह शैली चित्र को अमूर्तता प्रदान करती है और दर्शक को गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करती है। चित्र के केंद्र में कुछ महिलाएं और पुरुष दिखाई देते हैं, जो अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं। किसी के हाथ में घड़ा है, तो कोई सहारा देता हुआ प्रतीत होता है। यह सामूहिकता और सहयोग की भावना को दर्शाता है।

आकृतियों के झुके हुए चेहरे और सरल भाव जीवन की गंभीरता, संघर्ष और संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। रंगों का प्रयोग भी बहुत सूक्ष्म और संतुलित है। हल्के नीले, हरे, भूरे और पीले रंगों का संयोजन शांति और स्थिरता का वातावरण बनाता है। पृष्ठभूमि का हरा रंग प्रकृति और जीवन का प्रतीक है, जबकि धूसर रंग मानव जीवन की कठिनाइयों को दर्शाता है। चित्र में रेखाओं और आकृतियों का संतुलन यह दर्शाता है कि कलाकार ने केवल दृश्य नहीं, बल्कि भावनाओं को भी उकेरने का प्रयास किया है। यह पेंटिंग केवल एक दृश्य प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि समाज में परस्पर निर्भरता, सहानुभूति और एकता का संदेश देती है। समग्र रूप से यह पेंटिंग दर्शाती है कि जीवन में संघर्ष और कठिनाइयों के बावजूद, मनुष्य आपसी सहयोग और समझ के माध्यम से आगे बढ़ता है। कलाकार ने अपनी अनूठी शैली के माध्यम से साधारण जीवन को असाधारण अर्थ प्रदान किया है, जो इस कृति को विशेष बनाता है।

नीरज के बारें में

नीरज गोस्वामी भारत के एक प्रसिद्ध समकालीन चित्रकार और मूर्तिकार हैं, जिन्होंने अपनी अनूठी कला शैली से विशेष पहचान बनाई है। वे विशेष रूप से तेल रंगों के कुशल प्रयोग के लिए जाने जाते हैं, जिनसे उनकी पेंटिंग्स में अद्भुत चमक और जीवंतता दिखाई देती है। उनकी कलाकृतियों में आधुनिकता और भावनात्मक गहराई का सुंदर समन्वय मिलता है। नीरज गोस्वामी की रचनाएं दर्शकों को आकर्षित करने के साथ-साथ विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं। उन्होंने भारतीय कला जगत में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और अपनी सृजनशीलता के माध्यम से कला को नई दिशा प्रदान की है। वे सेलेडॉन पोर्सिलेन और ओनिक्स स्टायरेशन के रंगों का उपयोग करते हैं, जिससे उनके कैनवस में एक सौम्य चमक और अद्वितीय रंग संयोजन समाहित हो जाता है। नीरज की पेंटिंग्स कीमती पत्थरों से मिलती-जुलती होने के लिए जानी जाती हैं, जिनमें एक ऐसी पारदर्शिता दिखाई देती है, जो कला जगत में शायद ही कभी देखने को मिलती है। वे अपनी कलाकृतियों में एक उल्लेखनीय दीप्ति प्राप्त करते हैं, जिससे वे एक विशिष्ट और चमकदार गुणवत्ता के साथ अलग दिखती हैं। तेल रंगों पर अपनी महारत और रंगों के अनूठे संयोजन के माध्यम से, नीरज गोस्वामी पारंपरिक सीमाओं को पार करते हुए ऐसी कलाकृतियां बनाते हैं, जो अपनी चमक और दीप्ति से मंत्रमुग्ध कर देती हैं।

अनोखी परंपरा

नेपाल के न्यिनबा समुदाय में आज भी प्रचलित है 'पांचाली' प्रथा

हिमालय की ऊंची वादियों में स्थित नेपाल अपनी प्राकृतिक सुंदरता के साथ-साथ कुछ अनोखी और कम ज्ञात परंपराओं के लिए भी पहचाना जाता है। इन्हीं में से एक है 'पांचाली' प्रथा, जिसे भ्रातृ बहुपतित्व कहा जाता है। यह परंपरा महाभारत की द्रौपदी की कथा की याद दिलाती है और आज भी नेपाल के सुदूर हुमला जिले में रहने वाले न्यिनबा समुदाय के बीच प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार, एक ही महिला का विवाह परिवार के सभी भाइयों से कराया जाता है। आधुनिक समाज में यह व्यवस्था असामान्य लग सकती है, लेकिन इसके पीछे गहरे सामाजिक और आर्थिक कारण निहित हैं।

हुमला जिले के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र में बसे न्यिनबा लोग अत्यंत कठिन परिस्थितियों में जीवनयापन करते हैं। समुद्र तल से ऊंचाई पर स्थित इन गांवों में खेती सीमित है और संसाधन बहुत कम हैं। ऐसे में परिवार की जमीन का बंटवारा उनके लिए बड़ी समस्या बन सकता है। यदि प्रत्येक भाई अलग विवाह करे, तो जमीन छोटे-छोटे हिस्सों में बंट जाएगी, जिससे उत्पादन घटेगा और आर्थिक स्थिति कमजोर होगी। इस समस्या से बचने के लिए सभी भाइयों की शादी एक ही महिला से कर दी जाती है, जिससे संपत्ति संयुक्त रहती है और परिवार आर्थिक रूप से स्थिर बना रहता है।

इस व्यवस्था में विवाह सामान्यतः बड़े भाई से होता है, जो परिवार का मुखिया भी होता है। विवाह के बाद महिला सभी भाइयों की पत्नी मानी जाती है और परिवार सामूहिक रूप से जीवन जीता है। घर और आजीविका से जुड़े निर्णय बड़े भाई द्वारा लिए जाते हैं, जबकि अन्य सदस्य भी समान रूप से जिम्मेदारियां निभाते हैं। बच्चों को किसी एक पिता से नहीं जोड़ा जाता, बल्कि पूरे परिवार की संतान माना जाता है, जिससे पारिवारिक विवाद की संभावना कम हो जाती है। न्यिनबा समुदाय में महिलाएं घर और खेतों का कार्य संभालती हैं, जबकि पुरुष पशुपालन और व्यापार में लगे रहते हैं। जौ, बाजरा और आलू की खेती तथा नमक और ऊन का व्यापार उनकी आजीविका के मुख्य साधन हैं। हालांकि नेपाल सरकार ने 1963 में इस प्रथा पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया था, लेकिन दूरस्थ क्षेत्रों में इसका प्रभाव सीमित रहा है। 1980 के दशक में मानवशास्त्री नैन्सी लेविन ने इस परंपरा का अध्ययन करते हुए इसे केवल सामाजिक कुरीति नहीं, बल्कि कठिन परिस्थितियों में जीवित रहने की रणनीति बताया। आज भी यह प्रथा वहां के लोगों के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बनी हुई है।

बज्जिकांचल की बसेरी कला और कंचन प्रकाश

मानव की प्रारंभिक अभिव्यक्तियों में चित्रांकन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रागैतिहासिक शैलाश्रय चित्र इस बात के सशक्त प्रमाण हैं कि मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों, शिकार-जीवन और प्रतीकों को दृश्य रूप में अंकित किया। भाषा, संकेत और मौखिक परंपराओं के समानांतर विकसित होते हुए भी चित्रकला ने सामाजिक-सांस्कृतिक स्मृति के निर्माण में विशिष्ट योगदान दिया। यही परंपरा गुफा-चित्रों से आगे बढ़ते हुए विभिन्न सभ्यताओं में विकसित हुई और आज भी लोकजीवन में जीवित है। भारत के अनेक अंचलों की लोक चित्रकलाएं समकालीन कला परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति बनाए हुए हैं। आधुनिकता के विस्तार के बावजूद लोकचित्रों की प्रतीकात्मकता और सामुदायिक ऊर्जा आज भी आकर्षण का केंद्र है।

इसी सांस्कृतिक विरासत को रेखांकित करती प्रदर्शनी 'बज्जिका आर्टः कंचन प्रकाश और संजू देवी के बीच एक संवाद' का उद्घाटन 11 फरवरी 2026 को दिल्ली स्थित चंपा ट्री आर्ट गैलरी में हुआ। यह पहल आईसीसीआर, म्यूजियम ऑफ सेक्रेड आर्ट (MOSA) और गैलरी के संयुक्त सहयोग से आयोजित की गई। चित्रकार कंचन प्रकाश और सुजनी कढ़ाई कलाकार संजू कुमारी को साथ प्रस्तुत करते हुए यह प्रदर्शनी रंग और धागे के बीच संवाद रचती है। कथात्मक कढ़ाई और समानांतर चित्रित रूपों के माध्यम से यह आयोजन स्त्री सृजनशीलता और बज्जिका अंचल की जीवित परंपराओं को सामने लाता है।

सुमन कुमार सिंह
कलाकार/कला लेखक

बज्जिकांचल की जिस बसेरी (या बंसेरी/देव-सिंगार) लोककला को यहां प्रमुखता दी गई, वह मिथिला या मंजूषा की तरह व्यापक पहचान नहीं पा सकी है। बज्जिका के विद्वान उदय नारायण सिंह के अनुसार बसेरी कला कभी इस अंचल की सांस्कृतिक पहचान थी, जो आधुनिकता की चकाचौंध में धूमिल पड़ रही है। फिर भी कुछ कला अनुरागी इसे जीवित रखे हुए हैं। इस परंपरा को संजोने में चुल्हिया देवी, वासमती देवी, इंदिरा देवी और कृति देवी जैसी महिला कलाकारों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

बसेरी कला मूलतः विवाह-परंपराओं से जुड़ी भित्ति-चित्रकला है। बज्जिकांचल, जिसमें बिहार के मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, शिवहर और वैशाली जिले शामिल हैं, में यह विश्वास है कि विवाह के समय बांस-पूजन से वंश-वृद्धि और समृद्धि होती है। विवाह से पूर्व 'मटकोर' नामक रस्म के अवसर पर घर की बाहरी दीवारों को गोबर-मिट्टी से लीपकर उन पर बांस, पशु-पक्षी, फूल-पत्तियों और मंगल प्रतीकों का अंकन किया जाता है। कुछ स्थानों पर इस कार्य में नाई जाति की स्त्रियों की भी सहभागिता होती है।

मटकोर बिहार के ग्रामीण हिंदू विवाह संस्कारों की एक प्राचीन रस्म है। विवाह से एक-दो दिन पूर्व महिलाएं तालाब या खेत से मंगलगीत गाते हुए शुद्ध मिट्टी लाती हैं, जिससे मंडप (मड़वा) की वेदी तैयार की जाती है। यह मिट्टी धरती माता के आशीर्वाद, उर्वरता और नवजीवन का प्रतीक मानी जाती है। इसी क्रम में बांस के झुरमुट पर जाकर उसकी पूजा की जाती है। रोली, हल्दी, अक्षत और दीप अर्पित कर बांस देवता से अनुमति ली जाती है, तभी चयनित बांस काटा जाता है। बांस स्थायित्व, लचक और वंश वृद्धि का प्रतीक है।

बसेरी चित्र इन्हीं सांस्कृतिक मान्यताओं से प्रेरित होते हैं। दीवारों पर लंबवत बांस-आकृतियां, पत्तियां, चिड़ियां, लताएं और कभी-कभी सूर्य या कलश जैसे प्रतीक अंकित किए जाते हैं। रंगों में गेरुआ, हरा, पीला और नीला प्रमुख होते हैं। रेखांकन सरल, सजावटी और प्रतीकात्मक होता है। यह स्त्रियों की सामूहिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, जो विवाह को प्रकृति और समुदाय से जोड़ती है।

राज्य पुरस्कार और भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय की सीनियर फेलोशिप से सम्मानित कंचन प्रकाश ने इस दीवार-कला को कागज और कैनवास पर रूपांतरित कर नई पहचान दी है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कला संकाय से शिक्षित कंचन आधुनिक और समकालीन कला-भाषा से परिचित होते हुए भी अपने अंचल की परंपरा को संरक्षित और संवर्धित करने में सक्रिय हैं। उनके प्रयासों से यह विलुप्तप्राय कला राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मंचों तक पहुंच रही है।

वस्तुतः बसेरी कला केवल एक लोकचित्र परंपरा नहीं, बल्कि प्रकृति-सम्मान, स्त्री-सृजन और सामुदायिक एकता का जीवंत सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसके संरक्षण और संवर्धन के प्रयास निरंतर जारी रहें, यही अपेक्षा है।